विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)-16/84

वर्ष १४ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२८ • श्रावण पूर्णिमा [शक] • दि. ११-८-१९८४ • अंक २

विपश्यना और मार्गदर्शक

(१)

(डॉ. मेहरबान भामगारा)

दिल्लीके शाहू जैन परिवारके कुछ सदस्योंने विपश्यना साधना की और उससे उन्हें बहुत लाभ हुआ। इस कारण उन्हें यह प्रेरणा जागी कि एक ऐसे विपश्यना ध्यान शिविरका आयोजन किया जाय जो कि एकान्त वन-प्रदेशमें हो परन्तु साथ ही साथ सभी आधुनिक सुविधाओंसे परिपूर्ण भी हो। खोज-बीन करनेके बाद सिमलाके पास एक सुषुप्त पहाड़ी स्थलका चुनाव हुआ जिसे "चैल" कहते हैं और जिसे कई दसकों पूर्व पटियाला के महाराजाने अपनी ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाई थी। वहाँ एक आलीशान महलका निर्माण करके उसमें विश्व भरकी अनेक कला-पूर्ण वस्तुएँ संग्रहित की थी। अब यही महल हिमाचल-प्रदेश सरकारके सैलानी (पर्यटन) विकास निगम द्वारा "पैलेस होटल" के नामसे चलाया जा रहा है। महाराजाको क्रिकेटका बहुत शौक था और इसी कारण उसने यहाँ समुद्र तलसे लगभग ७८९० फीटकी ऊंचाई पर विश्वके सबसे ऊंचे क्रिकेट-मैदानका निर्माण किया था। जहाँ यह होटल स्थापित है उसके इर्द-गिर्द पहाड़ोंकी ढलाई पर लगभग दस हजार देवदारूके सुगंधित पेड़ उगे हुए हैं। आस-पास अनेक छोटे-छोटे निवास और काष्ठ-कुटीरें बनी हुई हैं। इनमेंसे कुछ राजमहलसे काफी दूरी पर भी हैं।

यह श्रीमती इंदु जैन और उनकी पुत्री कु. नंदिता की ही महत्वाकांक्षा थी कि विपश्यनाका शिविर ऐसे भव्य स्थान पर हो जहाँ कि समाजकी उच्चतम श्रेणीके लोग खिंचे हुए चले जाएँ। वे लोग जो कि इगतपुरीके सामान्य सुविधाओंवाले विपश्यना केन्द्र पर जानेमें हिचकते हों! यह दुःखकी बात हुई कि एक सौ से अधिक उच्चकुलीन आमंत्रित व्यक्ति शिविरमें इसलिए नहीं आ सके कि उन्हीं दिनों चंदीगढ़ व पंजाब में बहुत बड़ा उपद्रव हुआ। शिविर आरंभ होनेके दो दिन पूर्व ही पंजाबमें उपद्रवियोंने ३४ रेल्वे स्टेशनों को आग लगा दी और समाचार पत्रोंमें यह सूचना प्रकाशित हुई कि अनेक निरपराध व्यक्तियोंको लूटा गया और उनकी नृशंश हत्या की गयी। अतः जो बहुत साहसी लोग थे वही इस शिविरमें शामिल होने गए। ऐसा कहनेमें लेखकका अहंभाव प्रकट होता हो तो इसे मैं स्वीकार करता हूँ।

फिर भी थोड़ेसे लोग तो उस धनी वर्ग के थे ही जिनके कि जूट, कागज, कपड़े, चीनी इत्यादिके उद्योग थे। उनके अतिरिक्त एक बहुत बड़ी संख्यामें प्राचार्य, प्राध्यापक, वकील, डाक्टर, प्राकृतिक चिकित्सक, गृहणियाँ इत्यादि थीं। सब मिलाकर २०० से अधिक लोग थे जो कि हिमालयकी इन पहाड़ियों पर तपनेके लिए एकत्र हुए थे।

मार्गदर्शक गोयन्काजी

श्री सत्य नारायण गोयन्का कोई भगवे वस्त्रधारी संन्यासी या भिक्षु नही हैं। वे एक सद्गृहस्थ हैं और अपने प्रवचनमें मुस्कराते हुए अपनी स्थूलकाय पत्नीकी ओर इशारा करते हुए कहते हैं कि मैं संसार-त्यागी नहीं हूँ और इस बातका इतना बड़ा प्रमाण साथ लिए चलता हूँ। हमें बताया गया कि उनके छह पुत्र हैं।

यद्यपि उनके शिष्य परस्पर बातचीत करते हुए उनके लिए आदरपूर्वक "गुरुजी" शब्दका ही प्रयोग करते हैं लेकिन उन्हें यह अच्छा नहीं लगता। जब कभी वे किसीके द्वारा ऐसे संबोधित किए जाते हैं तो कहते हैं कि भूलो भाई इस गुरुडमको। वह मार्गदर्शक ही कहलाना ज्यादा पसंद करते हैं। किसी भी प्रकारकी पूजा-अर्चना को अच्छा न मानते हुए वह व्यक्ति-पूजाके तो बिल्कुल ही विरुद्ध हैं जैसे कि भगवान बुद्ध भी अपने जीवन-कालमें व्यक्ति-पूजाका विरोध करते रहे। श्री गोयन्काजी बार-बार

धम्म वाणी

साधु सुविहितान दस्सनं
कङ्खा छिज्जति, बुद्धि वड्डति।
बालं पि करोति पण्डितं
तस्मा साधु सतं समागमो॥

थेरगाथा – ७५.

सत्पुरुषोंका दर्शन भला है। इससे शंकाएँ दूर होती हैं। बुद्धि बढ़ती है। वे मूर्खों को भी समझदार बना देते हैं। अतः सत्पुरुषों की संगत करनी चाहिए।

इस बातकी याद दिलाते रहते हैं कि भगवान गौतम बुद्ध कभी नहीं चाहते थे कि कोई भी किसी व्यक्तिकी पूजा करे। यहाँ तक कि बुद्धकी भी पूजा करे। जो आदरभाव है वह मनुष्यके सद्गुणोंके प्रति ही होना चाहिए। और जब लोग "बुद्धं सरणं गच्छामि" कहते थे तो यही याद रखना चाहिए कि शरण बुद्ध की है। याने बोधि की है। किसी गौतम नामक व्यक्ति की नहीं। गौतम बुद्ध के पहले भी हजारों बुद्ध हुए और गोयन्काजीके कहनेके मुताबिक युगों तक अनेक बुद्ध होते ही रहेंगे।

गोयन्काजी ब्रह्मदेशमें जन्मे और वहीं पले। उनका वहाँ बहुत अच्छा पुश्तैनी धंधा था जिसकी वजहसे वह बहुत धनी थे। उन्हें माइग्रेनका रोग लग गया जिसके आक्रमण बार-बार और बहुत तीव्र होने लगे तो डाक्टरोंने अफीमकी सूई देनी शुरू कर दी। तब आशंका यह हुई कि कहीं अफीमका व्यसन न लग जाय। जब यूरोप, अमेरिका व जापान के अनेक डाक्टर उन्हें इस मार्फियासे न छुड़ा सके तो अपने एक शुभेच्छु की सलाह पर उन्होंने विपश्यना साधना करनेका निर्णय किया जो कि बर्मा में "सयाजी ऊ बा खिन" द्वारा अपने शुद्ध रूपमें सिखाई जाती थी।

गोयन्काजी अपने आचार्यके सान्निध्यमें विपश्यनाका अधिक से अधिक अभ्यास करने लगे। अफीमकी सूई से छुटकारा मिला ही। लेकिन वह तो केवल एक उपलाभ ही था। मुख्य लाभ तो यह हुआ कि उनका जीवन ही बदल गया। लोगोंके प्रति उनका व्यवहार बदल गया। उन्होंने स्वयं साक्षात्कार करके अपने आपको जान लिया। १४ वर्षों तक वह सयाजी ऊ बा खिनके संपर्क में रहे। तदनंतर किन्हीं कारणोंसे भारत आए और तब से विपश्यना के प्रचार-प्रसार के काम में लग गए।

गोयन्काजी जिस साधना पद्धतिका प्रशिक्षण देते हैं उसकी अटूट परंपरा भगवान गौतम बुद्धसे संबंधित है। लेकिन गोयन्काजी बौद्धवाद नहीं सिखाते। वस्तुतः वह कोई वाद नहीं सिखाते। उनका प्रशिक्षण सर्वथा सांप्रदायिकताविहीन है और शुद्ध आध्यात्मिक है। इसीलिए मुसलमानोंने अपनी मस्जिदोंमें उनका स्वागत किया जहाँ उन्होंने विपश्यनाके शिविर लगाए और उस समय अजान और नमाजका काम तक बंद रहा। इसी प्रकार ईसाइयोंने अपने गिरजाघरमें उनका स्वागत किया और शिविर लगवाए। साधना सिखाते हुए गोयन्काजी कहीं ईश्वरका नाम नहीं लेते और जिस प्रकार सामान्यतया जिस मजहबको हम धर्म कहते हैं उसका भी नाम नहीं लेते। किसी आत्माका भी उल्लेख नहीं करते। उनकी साधना प्रणाली तो इस साढ़े तीन हाथकी कायाके भीतर जो सच्चाई है उससे संबंधित है।

गोयन्काजी तुमसे अपने जीवनके दस दिन मांगते हैं जब कि तुम्हें अपने सभी पूजा-पाठ, माला जप, आरती, धूप-दीप इत्यादि छोड़कर मौन का पालन करना होता है। पहले तीन दिनों तक आना-पानका अभ्यास और बाकी दिनों विपश्यनाका। आना-पान करते हुए तुम्हें अपने सांसके प्रति जागरूक रहना होता है। नासिकामें से गुजरता हुआ सहज स्वाभाविक सांस बाहर जाता हुआ, भीतर आता हुआ। विपश्यना करते हुए पहले कुछ एक दिन शरीर के ऊपरी-ऊपरी स्तर पर जो संवेदनाएँ होती है उन्हे देखना होता है जैसे कि अप्रिय खुजली, चुभन, पीड़ा इत्यादि अथवा त्वचा के स्तर पर कोई प्रिय संवेदना हो तो वह भी। परन्तु इनमेंसे किसी की भी कल्पना नहीं करनी है। शरीरके जिस हिस्से में मन गया, यदि वहाँ कोई संवेदना न हो रही हो तो भी ठीक। शरीर के अगले अंगकी ओर बढ़ जाना है। यों आगे बढ़ते हुए त्वचाके स्तर पर सारे शरीरकी अनुभूति कर लेनी है।

केवल शरीर के ऊपरी-ऊपरी स्तर पर ही नहीं बल्कि आगे चलकर शरीरके भीतर तक की भी संवेदनाएँ महसूस करनी होती हैं। बाहर भीतर सर्वत्र। हो सकता है कभी धड़कन महसूस हो, कभी सांसके आने-जानेमें कोई परिवर्तन लगे, कभी कहीं खुजलाहट हो, कहीं दर्द हो अथवा कभी भीतर ही भीतर कोई उभार प्रकट हो इत्यादि, इत्यादि। बस सारी संवेदनाओंको साक्षीभावसे देखना है। इन्हें न अच्छा मानना है, न बुरा। तटस्थभावसे देखते हुए स्वतः स्पष्ट हो जायेगा कि सारी संवेदनाएँ भंगमान हैं, अनित्य हैं। कोई भी नित्य नहीं, ध्रुव नहीं। संवेदनाएँ सभी वास्तविक हैं। अनुभूति पर उतरती हैं। बार बार होती रहती हैं लेकिन फिर भी हैं अनित्य ही। यों साक्षीभावसे देखते देखते अनित्य भाव पुष्ट होता जाता है और अनुभूति के स्तर पर यह स्पष्ट होता जाता है कि सब कुछ परिवर्तित हो रहा है। साधना के समय तो यह सच्चाई संवेदनाओं की अनुभूतिके स्तर पर जानते हैं। लेकिन बाहर जीवनमें उतरने पर पारस्परिक संबंधोंमें, अपनी दुर्बलताओंमें – जैसे वासना, लोभ, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि में संवेदनाओंके प्रति द्रष्टाभाव जुड़ जायेगा। सारी स्थितियोंको साक्षीभावसे देखना आ जायेगा और इनके प्रति अनित्यभाव पुष्ट होता जायेगा। अपने भीतर इन गंदगियोंको देखते-देखते हो सकता है उदासी जागे, निराशा जागे। लेकिन गोयन्काजी कहते हैं कि धर्म के पथ पर न उदासीके लिए, न निराशाके लिए और न ही अपराध भावनाके लिए कोई स्थान है। धर्म के पथ पर चलते हुए तुम इस क्षण में जीना सीखते हो, न भूत में, न भविष्य में।

क्रमशः . . (अगले अंक में)

●

क्रमशः (गतांकसे)

साधकों से समालाप (२)

(डॉ. मेहरबान भामगारा)

स्विटजरलैंडकी मिसेज ब्रिगांडिट, "पहले मैं बहुत चिंतनग्रस्त रहा करती थी। आर्थमौन की वजहसे चिंतनका सिलसिला कम हुआ। एल्प्स पर्वत की बहुत अधिक स्कीइंग करनेके कारण मैं घुटनों, कंधों और कमरकी पीड़ासे हमेशा पीड़ीत रही हूँ। अतः मेरे लिये इस साधनामें सुखासन में बैठना भी सरल नहीं था। संवेदनाएँ बहुत देर तक चलती थीं और थकानेवाली होती थीं। लेकिन यहाँ मैंने अपनी पीड़ाओंको साक्षीभावसे देखना सीखा।"

●

सुश्री मिशेल सडैव ताईची जैसे नृत्य अंग भंगिमाके अभ्यासमें

रुचि रखती रही है। वह जंगलोंके निबिड़ अंधकारमें चलनेका अभ्यास करती रही है। आंख पर पट्टी बांधकर शहरोंकी आमद-रफ्त सड़कों पर चलनेका अभ्यास करती रही है ताकि वह अपने चक्षु इंद्रिय के अतिरिक्त अन्य इंद्रियोंका उपयोग करना सीखे। स्विटजरलैंड रहते हुए उसने जो इस प्रकारकी सजगताके अभ्यास किए थे उनसे उसे विपश्यनामें कुछ समानता लगी।

●

१९२१ से स्वतंत्रता संग्रामके सेनानी श्री मन्मथनाथ गुप्त, जिन्होंने कि अपने जीवनके २० वर्ष अंग्रेजी कैदखानेमें बिताए, कहा कि वह नास्तिक हैं और विपश्यना से उनका पहला सामना हुआ है। गुप्तजी "योजना", "बालभारती" और "आजकल" नामक पत्रिकाओंके संस्थापक व संपादक रहे हैं। उन्होंने अब तक ४२ ग्रन्थोंकी रचना की है। उनका आधुनिक प्रकाशन "गांधी और उनका युग" है। इस बातको स्वीकार करते हुए भी कि मानसिक शांतिके लिए मौन बैठना सीखना ही चाहिए, उन्होंने कहा, "मैं इसकी बजाय एक परिवार-नियोजन की स्थापनाको अधिक महत्व दूंगा जहाँ कि १०० व्यक्तियोंकी नसबंदी रोजाना होती हो। यह साधना काम की है पर इसकी अभी इतनी शीघ्र आवश्यकता नहीं है।"

●

जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय, नई दिल्लीमें इतिहास विभागकी श्रीमती माया गुप्ता। इन्होंने किसी भी प्रकारकी ध्यान साधनाका पहली ही बार अभ्यास किया। इन्होंने बताया, "मैं जब कभी सामाजिक अथवा राजनैतिक अन्याय देखती हूँ तो बहुत क्रुद्ध हो जाती हूँ। भीतर ही भीतर सुलगने लगती हूँ। विपश्यना ने मुझे मानसिक समताका पाठ पढ़ाया है। मैं यह कहना चाहूँगी कि गोयन्काजीके प्रवचन बुद्धिके उच्चतम धरातल को छूतेहैं।"

●

नई दिल्लीके जीवन अनुसंधान प्रतिष्ठानके सक्रिय सदस्य श्री गोपीकृष्ण। इन्होंने अब तक विपश्यनाके ६ शिविर ले लिए हैं, "मैं बहुत बातूनी व्यक्ति हूँ। सौभाग्यसे विपश्यनाने मौन कर दिया। वाणी-विहीन अनुभूति प्रदान करके।" उसने बताया कि वह श्लेष भाषा बोलनेका आदी है। शब्दोंके साथ खिलवाड़ करनेकी उसकी रुचि है। एक उदाहरण देते हुए, "विपश्यना अभ्यास मेरे लिए एक रिग है, बरमा है। भीतर भेद करनेवाला बरमा। भेदन करते हुए कभी बालूका सामना होता है, कभी चट्टान का, कभी-कभी बहुत कठोर अभेद्य चट्टानका। लेकिन मैं बरमा चलाते जाता हूँ, भेदन करते जाता हूँ और इस प्रकार कभी कभी मुझे तेल प्राप्त हो जाता है, कभी कभी गैस..."

●

गलेरी वाकर एक आस्ट्रेलियन महिला है जिसे भारतसे प्यार है और वह यहाँ कई महीनोंसे रहती है। उसने इस देशमें बहुत भ्रमण किया है। वह शिविरके सभी अनुशासन बहुत कड़ाई से पालती रही। उसने बताया, "यह मेरे लिए एक आश्चर्यजनक अनुभूति थी। पहले मैं अपने शरीरके भीतर, छाती और पेटके भीतरी अंगोंका भार महसूस करती थी। अब जैसे उनका अस्तित्व ही नहीं है। तुम एक डॉक्टर हो और इस बातको स्वीकार करोगे कि स्वस्थ होनेकी सूचना यही है कि हमारे ये भीतर के अंग बिना आवाज किए अपना काम करते रहें और हमें उनके अस्तित्वकी अनुभूति न हो।"

●

श्री मनोहर काठधरे बम्बई का एक आर्कीटेक्ट है। इगतपुरीमें विपश्यना विश्व विद्यापीठके भवनोंके निर्माणकी संयोजनामें उसने सहायता की थी। यह उसका तीसरा शिविर है। लेकिन उसकी समस्या है – उसे कोई संवेदना नहीं महसूस हुई। इसलिए वह ध्यानमें प्रगति नहीं कर सका। वह समझता है कि बचपनसे ही कट्टर हिन्दू मान्यताओंमें बहुत गहराइयों से डूबा होनेके कारण उसके लिए बाधाएँ उपस्थित हैं।

●

बम्बई का एक व्यापारी श्री नारायणदास मानधना शिविरमें पहली बार शामिल हुआ। उसने बताया कि किसी व्यक्तिने उसकी बहुत हानि की। इसलिए उस व्यक्तिके प्रति उसके मनमें गहरी दुर्भावना थी। जब चैल आया तो वह इन सारी दुर्भावना-ओंको अपने साथ लेकर आया। लेकिन जैसे जैसे साधनामें आगे बढ़ने लगा तो उसने देखा कि उस व्यक्तिको लेकर उसके मनमें जो कटुता थी उसका तनाव ढीला पड़ने लगा और अन्ततः उसे इस तनावसे मुक्ति मिली और कटुता करुणामें बदलने लगी। उसने कहा, "यह मेरे लिए करुणा और मैत्रीभावका बहुत ही आश्चर्यजनक अनुभव रहा।"

●

एक फिल्म अभिनेताकी तरह दिखनेवाला शीलधर पांडे ध्यानकक्ष में चुस्त जीन पहनकर आता था लेकिन फिर भी पाल्थी मारकर बैठ पाता था। उसने कहा, "पहले दो दिनों में ही मैं अपनी बम्बई आफिससे जितना तनाव लेकर आया था वह सारा दूर हो गया। मैं अपने कार्यालयमें एक बहुत महत्वपूर्ण दस्तावेज खो बैठा था। बम्बई छोड़ने तक उसकी बहुत खोज-बीन करते रहा। परन्तु सफल नहीं हुआ। विपश्यना करते हुए जब मेरा मन शांत हो गया तो एक बार ध्यानके दौरान मुझे अपने कार्यालयका वह स्थान दीख पड़ा जहाँ कि वह दस्तावेज पड़ा था।"

●

कलकत्तेका एक लड़का सिगरेट पीनेका व्यसनी। यद्यपि यह वर्जित था लेकिन शिविरके दौरान भी वह सिगरेट पीते ही रहा। उसने बताया कि उसके लिए यह प्रोग्राम बहुत ही थकानेवाला, ऊबानेवाला साबित हुआ। केवल एक दिन जिस शामको विपश्यना दी गयी, उसे कुछ अच्छा लगा। यों लगा कि उसका शरीर दिव्य शक्तियों से भर गया है और एक विचार उसके मन में आया कि इस समय काम-भोगका अनुभव बहुत अद्भुत होगा।

●

किसी एक स्कूलका अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य शिविरमें मौन-व्रतका पालन नहीं कर सका। मेरा अनुमान तो यह है कि कम से कम चालीस प्रतिशत लोगोंने शिविरके दौरान कभी न कभी अपना मौन तोड़ा ही। एक भाई ने फबती कसी कि मौन तोड़नेवालोंमें महिलाओंकी संख्या अवश्य अधिक होगी क्योंकि वह स्वभावसे ही बातूनी होती हैं।

●

नई दिल्लीके मेसर्स किर्लोस्कर के श्री. एस. डी शर्मा बहुत अनुशासन प्रेमी थे और उन्होंने शिविरके सारे नियमोंका कड़ाई से पालन किया। वह समाधि प्राप्त करनेके लिए बहुत प्रयत्नशील रहे। उन्हें अत्यधिक आनंदकी अनुभूति हुई। अंतिम दो दिनों उन्होंने सिवाय फल के और कोई भोजन नहीं लिया। उन्होंने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, "जब तक मैंने फलोंके सिवाय कुछ नहीं लिया तो मेरी साधना बहुत उत्तम हुई।"

एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त व्यावसायिक प्रतिष्ठानके क्षेत्रीय प्रबंधक ने एक अनोखी कहानी सुनाई। "तीन महीने पूर्व कलकत्ते में किसीने मेरी कारमें एक पत्रक छोड़ दिया। वह इस विपश्यना शिविरके लिए आमंत्रण-पत्र था। इस पत्रकको पढ़नेके बाद ही मुझे अपने जीवनमें विचित्र अनुभव होने लगे। तब तक मैं अपने जीवनमें पतनकी ओर ही गिरता जा रहा था। बहुत नशा-पता करता था और सिगरेटें पीता था, जुआ खेलता था। यह पत्रक पढ़नेके बाद जैसे ही मैंने निर्णय किया कि मैं विपश्यना का प्रशिक्षण लेने जाऊंगा तो बड़े आश्चर्यजनक ढ़गसे मेरा जुआ और सिगरेट पीना छूट गया। अब इस शिविरके अंतिम दिन तो मुझे ऐसा दृढ़ विश्वास हो रहा है कि मेरे सारे अवगुण मुझसे दूर हो गए हैं और वे फिर कभी लौटने वाले नहीं।"

फादर डेनिस रेकेली विपश्यनाके एक पुराने साधक हैं। यह उनका १२ वाँ शिविर है। १९५५ से यह एक बहुत ही कठोर अनुशासन वाले रोमन कैथोलिक संन्यासी संघके संन्यासी रहे हैं। इन्हें विपश्यना करने के लिए वेटिकन के अधिकारियोंसे विशेष आज्ञा लेनी पड़ी। उन्होंने बताया, "हमारी अपनी परंपरामें ध्यानका अर्थ होता है धर्मग्रंथोंमें जो कुछ लिखा है उसका मन ही मन, मनन करना। विपश्यनामें ध्यान साधनाकी एक अनोखी टेकनीक मिली।" उन्हें इसी वर्ष अमेरिकामें अपने संन्यासी संघ में लौट जाना है और उन्होंने बताया कि वहाँ पहुँचकर वह अपनी परंपरागत साधना के साथ साथ विपश्यना भी करते रहेंगे।

क्रमशः.....

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित
↓

दूहा धरम रा

सम्प्रदाय रै रीस सूं, आंख्यॉं कर ली लाल।
धरम न समझ्यो बावळो, हुयो हाल बेहाल ॥१॥
सुद्ध धरम रै पंथ सूं, मोड़ै हुई पिछाण।
सम्प्रदाय परमुख र यो, चढ्यो सीस अग्यान ॥२॥
रगड़ा झगड़ा मँह पड्या, खोया दिन अनमोल।
इब तो पीवां धरम को, सांति सुधा रस घोल ॥३॥
रीस लाय पर धरम की, इमरत बरसा होय।
सबका मन सीतल करै, सब को मंगल होय ॥४॥
जन जन रै मन प्यार री, गंगा बवै पुनीत।
या हि धरम री रीत है, र वै परस्पर प्रीत ॥५॥
द्वेस द्रोह सारा मिटै, बैर भाव ह्वै दूर।
भाई भाई मँह जगै, फेर प्यार भरपूर ॥६॥

दोहे धर्म के

देख बिचारे धरम की, कैसी दुर्गति होय!
लड़ें धरम के नाम पर, पाप प्रफुल्लित होय ॥१॥
बढ़ा धरम के नाम पर, सम्प्रदाय पुरजोर।
जन जन मन व्याकुल हुआ, दुख छाया सब ओर ॥२॥
सम्प्रदाय का मद चढ़े, धर्म तिरोहित होय।
अपना भी अनहित करे, जन जन अनहित होय ॥३॥
संतों की संगत भली, मंगलकारी होय।
सम्प्रदायका तम कटे, धरम उजागर होय ॥४॥
सम्प्रदायका धर्म से, ताल मेल ना खाय।
एक सदा उलझावता, एक सदा सुलझाय ॥५॥
सम्प्रदाय अनहित करे, धरम करे कल्याण।
धरम धार मंगल सधे, जन मन पुलकित प्राण ॥६॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/ आजीवन शुल्क रु. १००/-

विपश्यना" 8/84
पो. र. नं. NS(M) 16/84

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

To

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३
(नासिक, महाराष्ट्र)